National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN:
NJHSR 2015; 1(1): 30-33
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 26-08-2015
Accepted: 30-08-2015

डॉ. ममता गुप्ता
पी.डी.एफ.
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
रा.दु.वि.वि. जबलपुर (मध्य प्रदेश)

Correspondence:
डॉ. ममता गुप्ता
पी.डी.एफ.
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
रा.दु.वि.वि. जबलपुर (मध्य प्रदेश)

रसालङ्कार की अवधारणा और भोज

डॉ. ममता गुप्ता

सार -

भोज ने काव्य के रसोक्ति, वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति नामक तीन भेद माने हैं जिनमें से रसोक्ति के अन्तगत रसालङ्कार का वर्णन किया है। रसालङ्कारों के अन्तर्गत रसवद्, प्रेयस, ऊर्जस्वि तथा समाहित अलङ्कार आते हैं। इनका उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य भामह के ग्रन्थ काव्यालङ्कार में प्राप्त होता हैं- जहाँ स्पष्ट रूप से रस प्रदर्षित हो वहाँ रसवद् अलङ्कार तथा जहाँ पर देवविषयक प्रीति दर्शायी गयी हो वहाँ प्रेयोलऽङ्कार होता है। आचार्य भामह ने ऊर्जस्वि का लक्षण न करके केवल उदाहरण द्वारा ही उसे स्पष्ट मान लिया है। दण्डी के अनुसार प्रियतरभाव की अभिव्यक्ति करने वाले आख्यान को प्रेयस् अलङ्कार, उत्कर्षयुक्त रति आदि स्थायी भावों से रमणीय आख्यान को रसवत् तथा उत्कर्षयुक्त गर्वद्योतक आख्यान को ऊर्जस्वि माना जाता है। दण्डी ने इस उत्कर्ष को ही अलङ्कार का बीज स्वीकार किया है- काव्यषोभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते। इस सम्बन्ध में दण्डी को ही प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए भोज ने स्थायी भावों के युक्तोत्कर्षत्व को रसालङ्कार माना है-युक्तोत्कर्षाणमुर्जस्विरसवत्प्रेयसामलङ्कारेषु उपदेषात्। भोजराज गुणों को भी अलङ्कार मानते हैं और रस को भी परन्तु जब रस पूर्ण रूप से व्यक्त नही होता अपितु रति आदि भाव केवल युक्तोत्कर्ष होते हैं, मात्र उद्बुद्ध होते हैं तब वे अलङ्कार सदृश ही होते हैं।

कुंजी शब्द - वक्रोक्ति, रसोक्ति, स्वभावोक्ति, रसवद् अलङ्कार, प्रेयोलऽङ्कार, ऊर्जस्वि अलङ्कार।

आमुख - महाराज भोज परमार वंश के सबसे महान अधिपति तथा माँ सरस्वती के वरद पुत्र थे। वे प्रतापी और वीर होने के साथ कवि, दार्शनिक और ज्योतिष भी थे। कहा जाता है कि उनके तप से प्रसन्न होकर माँ सरस्वती ने उनकी तपोभूमि धारा नगरी में स्वयं प्रकट हो कर दर्शन दिए थे। माँ के दर्शन के पश्चात उनके उसी स्वरूप को प्रतिमा के रूप में अङ्कित करके भोजशाला में स्थापित करवाया। उन्होनें धार, माण्डव और उज्जैन में सरस्वतीकण्ठाभरण नामक भवनों का निर्माण भी कराया। भोजराज ने विभिन्न विषयों से सम्बन्धित लगभग चैरासी ग्रन्थों की रचना की जिनमें से दो ग्रन्थों का अभिधान सरस्वतीकण्ठाभरण है। एक ग्रन्थ व्याकरण से सम्बन्धित है तथा दूसरा काव्यशास्त्र से।

भोज की रसालङ्कार सम्बन्धी अवधारणा -

प्रस्तुत लेख में काव्यशास्त्रीय सरस्वतीकण्ठाभरण को आधार ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया गया है। यह एक विपुलकाय ग्रन्थ है जिसे पाँच परिच्छेदों में विभक्त किया गया है। प्रथमपरिच्छेद में काव्य की सामान्य परिभाषा देने के पष्चात दोषों तथा गुणों का विवेचन किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में शब्दालङ्कार का निर्णय करते हुए जाति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुम्फना, शय्या एवं पठिति का सोदाहरण वर्णन किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अर्थालङ्कारों तथा चतुर्थ परिच्छेद में उभयालङ्कारों का भेदोपभेद पूर्वक विवेचन है। पंचम परिच्छेद रस विवेचन को समर्पित है ।भोज का समय 1000 ई. से 1055 ई. तक माना जाता है। अतः सरस्वतीकण्ठाभरण का रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है जो काव्यप्रकाष से कुछ पूर्व का है। इस समय तक आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की जा चुकी थी परन्तु वह पूर्णरूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। अतएव भोज ने ध्वनि को काव्य स्वरूप में साक्षात रूप से तो स्वीकार नहीं किया है परन्तु गुण और रस के माध्यम से उसके महत्त्व को अस्वीकार भी नहीं किया है-

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरनङ्कृतम्।
रसान्वितं कविःकुर्वन्कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

भोज ने काव्य के तीन भेद किए हैं भोज ने काव्य के वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति जिनमें से उन्होंने रसोक्ति को सबसे अधिक काव्योपयोगी मानते हुए उसे सर्वानुग्राहिणी कहा है -

वक्रोक्तिष्च रसोक्तिष्च स्वभावोक्तिष्च वा
सर्वानुग्राहिणी तासु रसोक्ति प्रतिजानते।।[2]

अर्थात् वाङ्मय वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति तीन प्रकार का है, इनमें से सब पर अनुग्रह करने वाली रसोक्ति को विद्वान जानते हैं। रस के योग से काव्य कमनीयता को प्राप्त करता है-

रसोऽभिमानोऽहंकारः श्रृङ्गार इति गीयते।
योऽर्थस्तस्यान्वयात्काव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।
श्रृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव चेदश्रृङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत्।।[3]

भोज ने (1) भाव, (2) जन्मानुबन्ध, (3) निष्पत्ति, (4) पुष्टि, (5) सङ्कर, (6) ह्रास, (7) आभास, (8) शम, (9) शेष, (10) विशेष, (11) परितोष, (12) विप्रलम्भ, (13) सम्भोग, (14) इन दोनो की चेष्टाएँ, (15) इन दोनो की परीष्टि, (16) निरुक्ति, (17) प्रकीर्ण, (18) प्रेमान्, (19) प्रेमपुष्टि, (20) नायक के गुण, (21) नायिका के गुण, (22) पाकादि, (23) प्रेमभक्ति, (24) नानालङ्कार संसृष्टि ये 24 रसोक्ति के प्रकार तथा रसान्वय की विभूतियाँ हैं।[4]

सरस्वतीकण्ठाभरण में रसोक्ति के नानालङ्कार संसृष्टि नामक प्रकार के अन्र्तगत रसालङ्कार का वर्णन प्राप्त होता है। रसालङ्कारों के अन्तर्गत रसवद्, प्रेयस, ऊर्जस्वि तथा समाहित अलङ्कार आते हैं। इनका उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य भी यह के काव्यालङ्कार गन्थ में प्राप्त होता हैं।

रसवद् अलङ्कार का लक्षण करते हुये भामह का कथन हैं-

रसवद्दर्षितस्पष्टश्रृङ्गारार्दिरस यथा।
देवी समागमाद्धर्ममस्करिण्यतिरोहिता।।[5]

अर्थात् जहाँ स्पष्ट रूप से रस प्रदर्षित हो वहाँ रसवद् अलङ्कार होता है। जहाँ पर देवविषयक प्रीति दर्षायी गयी हो वहाँ प्रेयोलऽङ्कार होता है-

प्रेयो गृहागंत कष्णमवादीद्विदुरो यथा।
अद्य मम गोविन्द जाता त्वयि मम गृहागते।
कालेनैषा भवेत्प्रीतिस्तवैवागमनात्पुनः।।[6]

आचार्य भामह ने ऊर्जस्वि का लक्षण न करके केवल उदाहरण द्वारा ही उसे स्पष्ट मान लिया जाता है-

ऊर्जस्वि कर्णेन यथा पार्थाय पुनरागतः।
द्विः सन्दधाति किं कर्णः षल्येत्यहिरपाकृतः।।[7]

भामह द्वारा दिये गये रसवादादि अलङ्कारों के लक्षण तथा उदाहरण अधिक स्पष्ट नहीं है। उनके परवर्ती दण्डी ने इन अलङ्कारों का अधिक रूचि पूर्वक विवेचन किया है। उनके अनुसार प्रियतर भाव की अभिव्यक्ति करने वाले आख्यान को प्रेयस अलङ्कार कहा जाता है। भाव का अर्थ है देवविषयक रति तथा प्रधान रूप से वर्णित व्यभिचारी भाव अर्थात् आख्यान में अभिव्यक्ति होने वाली देवविषयक रति अथवा निर्वेदादि व्यभिचारी भाव जहाँ उत्कर्ष से युक्त हो वाच्यार्थ की शोभावृद्धि करे वहाँ प्रेयस् अलङ्कार होता हैं। इसी प्रकार उत्कर्षयुक्त रस तथा रति आदि स्थायी भावों से रमणीय आख्यान को रसवत् तथा उत्कर्षयुक्त गर्वद्योतक आख्यान को ऊर्जस्वि माना जाता है-

प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेषलम्।
ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्ष च तत्त्रयम्।।[8]

उपर्युक्त तीनों उत्कर्ष से युक्त है अतः ये अलङ्कार है क्योंकि दण्डी ने इस उत्कर्ष को ही अलङ्कार का बीज स्वीकार किया है-

काव्यषोभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।।[9]

आचार्य दण्डी ने प्रयोलऽङ्कार का वही उदाहरण दिया है जो भामह ने दिया था परन्तु रसवद् अलङ्कार के प्रसङ्ग में भामह ने जहाँ केवल श्रृङ्गार रस का अपूर्ण सा उदाहरण देकर विषय की इतिश्री कर दी थी, वहीं दण्डी ने रसों के पृथक-पृथक और पूर्ण उदाहरण देकर विषय को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया हैं।

रसवदादि अलङ्कारों का वर्णन वामन के ग्रन्थ में नहीं मिलता है उन्होंने केवल ''कान्ति'' नामक अर्थ गुण के अन्तर्गत ही रस का वर्णन किया है। उनके समसामयिक उद्भट के काव्यालङ्कार में रसवादादि अलङ्कारों का व्यवस्थित क्रम में वर्णन किया गया है। यद्यपि उन्होंने इस संबंध में भामह का ही अनुकरण किया है तथापि उनके वर्णन, प्रतिपादन में मौलिकता तथा स्पष्टता हैं। उनके अनुसार-प्रयेस्वत्वात्-

रत्यादिकानां भावानामनुभावादिसूचनैः।
यत्काव्यं बध्यते सद्भिस्त्प्रेयस्वदुदाहृतम्।।[10]

अर्थात् रति आदि भावों के सूचक अनुभावों की सहायता से सत्कवियों द्वारा जिस काव्य का निबन्धन किया जाता है उसे ''प्रेयस्वत्'' कहा जाता है। जहाँ पर स्वषब्द, स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव के द्वारा रस का उदय होता है वहाँ रसवद् अलङ्कार होता है-

रसवद्धर्षितस्पष्टश्रृङ्गारादिरसोदयम्।
स्वषब्द स्थायिसञ्चारिविभावाभिनयास्पदम्।।[11]

काम, क्रोध आदि के कारण भावों और रसों की अनुचित प्रवृत्ति का वर्णन ही ऊर्जस्वि अलङ्कार हैं।

अनौचित्यप्रवृत्तानाम् कामक्रोधादिकारणात्।
भावानां व रसानाम् व बन्ध ऊर्जस्वि कथ्यते।।[12]

तथा रस,भाव, रसाभास तथा भावाभास के प्रषमन का वर्णन सम्मनाहित अलङ्कार कहलाता है-

रसभावतदाभासवृत्तेः प्रषमबन्धनम्।
अन्यानुभाविनिःघून्यरूपं यत्तत्समाहितम्।।[13]

प्राचीन आचार्यों का समाहित अलङ्कार इससे भिन्न था। दण्डी ने समाहित अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार दिया है-

किञ्चिदारमभ्यमाणस्य कार्यं दैववषात् पुनः।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदादुः समाहितम्।।[14]

आचार्य उद्भट ने इसे समाहित न मानकर ''समाधि'' की संज्ञा दी है। वस्तुतः उद्भट द्वारा परिभाषित समाहित ही रसवदादि की परिधि में आना है। आचार्य उद्भट के रसवत् अलङ्कारों के लक्षण अधिक स्पष्ट और वैज्ञानिक हैं।

उनकी रसवत् की परिभाषा में रस के साथ उसके अवयवों का भी समावेष हो गया है। ऊर्जस्वि अलङ्कार के लक्षण में उद्भट ने अनौचित्य.....कारणात् कह कर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है जिसे परवर्ती सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है।

इस प्रकार उद्भट के समय तक स्पष्ट रूप से वर्णित रस को रसवत अलङ्कार भाव को प्रेयस् अलङ्कार, अनौचित्यप्रवृत्त रस, रसाभाव तथा भाव, भावाभास को ऊर्जस्वि तथा रस व भाव के प्रशमन समाहित अलङ्कार माना गया है।

रसादि को अलङ्कार मानने वाले आचार्यों के मत में रस, भाव का निबन्धन वाच्यार्थ को अलंकृत करने के लिए ही होता है। अतः वह अलङ्कार ही है। प्राचीन अलङ्कारवादियों की विचारधारा परवर्ती अलङ्कारवादी आचार्यों को भी अनुचित सी प्रतीत हो रही थी। वे भी रस को अलङ्कार मानने के पक्ष में नहीं थे। इसी कारण उद्भट के परवर्ती रूद्रट ने रस, भाव आदि का वर्णन अलङ्कारों के अन्तर्गत न करके स्वतन्त्र रूप में किया है।[15] उद्भट के व्याख्याकार प्रतीहारेन्दुराज ने भी यह प्रश्न उठाया है कि रस को अलङ्कार माना जाय या काव्य की आत्मा-

रसानां भावानां व काव्यषोभितिषय हेतुत्वात् किं काव्यलङ्कारत्वमुत काव्यजीवितत्वमिति नतावद् विचार्यते ग्रन्थ गौरवभयात्।[16]

परन्तु इसका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। रूद्रट प्रतीरेन्दुराज आदि आचार्यों के विचारों को आचार्य आनन्दवर्धन ने मूर्त रूप दिया उन्होंने बताया कि रस तो अलंकार्य है उन्हें अलङ्कार नहीं माना जा सकता। जब वे स्पष्ट और मुख्यरूप से वर्णित होकर पूर्ण परिपाक का प्राप्त होते हैं तब वाच्यालङ्कार, गुणादि सब उसके उपस्कार में तत्पर रहते हैं। अतः उन्हें अलङ्कार नहीं कहा जा सकता है।[17]

उन्होंने प्राचीनों की रसवदादि अलङ्कारों की मान्यता को पूर्ण रूप से अस्वीकार भी नहीं किया। उनके अनुसार यद्यपि रस अलङ्कार्य है, तथापि वे उन स्थितियों में अलङ्कार भी हो सकता हैं जहाँ वे किसी अन्य अर्थ की चारूत्व वृद्धि में तत्पर हों। इस स्थिति में उन्हें रसवदादि अलङ्कार की संज्ञा दी जा सकती है-

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्रांगन्तु रसादयः।
काव्ये तस्मिन्त्रलङ्कारों रसादिरिति मे मतिः।।[18]

भोज ने काव्य के रसोक्ति, वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति नामक तीन भेद माने हैं जिनमें से रसोक्ति के अन्तगत रसालङ्कार का वर्णन किया है। भोज का कथन है-

नानालङ्कारसंसृष्टेः प्रकारष्च रसोक्तयः।[19]

इस कथन का अभिप्राय व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि अलङ्कार संसृष्टि के स्थान पर नानालङ्कार संसृष्टि का कथन गुणों और रसों का सन्निवेष करने के लिए किया गया है क्योंकि काव्य की शोभा बढाने के कारण इनकी भी अलङ्कारता सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में ही प्रमाण प्रस्तुत करते हुए भोज दण्डी को उद्धृत करते हैं

काव्यषोभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कातर्न्येन वक्ष्यति।।

और आगे कहते हैं कि वहाँ दण्डी काव्यशोभाकारान् इस पद श्लेष, उपमा आदि की भाँति गुण, रस ,रसाभाव, रसाभास, भावशान्ति को भी ग्रहण कर लेते हैं-

श्लेषः प्रसाद समता माधुर्य्य सुकुमारता।
अर्थाव्यक्तिरुदारत्वमोजःकान्तिसमाधयः।
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणाः स्मृताः।
तशां विपय्र्ययः प्रयोलक्ष्यते गौडवत्मनि।।[20]

इस प्रकार श्लेष आदि दस गुणों की ही मार्ग विभाजकता कहते हुए काव्य में शोभा उत्पन्न करने के कारण अन्य गुणों की भी अलङ्कारता सिद्ध करते हैं। भोज का मत है कि यद्यपि दण्डी का यह कथन कस्तान् कातर्न्येन वक्ष्यति तो उचित है, परन्तु जहाँ रसों की अलङ्कारता कही गई है वह अनुचित है क्योंकि गुणों की भाँति रसों की अलङ्कार संज्ञा नहीं है। तथापि सिद्धान्तः रसों को अलङ्कार कहना पूर्ण रूप से अनुचित भी नहीं है क्योंकि उनमें युक्तोत्कर्षता अर्थात् वाच्यार्थ के प्रति शोभाकारक होने के कारण ऊर्जस्वि, रसवत, प्रेय का अलङ्कार के रूप उपदेष किया गया है।
प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेषलम्।

ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्ष च तत्त्रयम्।।[21]

दण्डी की इस कारिका की व्याख्या करते हुए भोज कहते हैं –

रसवद्रसपेषलमित्यनेनविभावानुभावव्यभिचारी
सात्त्विक संयोगाद्रसनिष्पत्तिरिति
रत्यादिरूपेण अनेकधा आविर्भवतोऽभिवर्द्धमानस्य
परप्रकर्षगामिनः श्रृगारस्य मध्यमावस्थां सूचयति।[22]

रसवद्रसपेशल इस कथन के द्वारा बताया गया है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी और सात्त्विक भावों के संयोग से रसनिष्पत्ति होती है, इसलिए रति आदि रूप में अनेक प्रकार से आविभूत होने वाले, सर्वत्र फैलते हुए तथा चरमोत्कर्ष को करने वाले श्रृङ्गार की मध्यम अवस्था को सूचित करता है। यहाँ पर कारिका में आए उर्जस्वि, रसवद् आदि शब्दों के व्याख्यान के पष्चात अन्त में जिस मध्यमावस्था का कथन किया गया है उसका अभिप्राय यह है कि जब वे भाव पूर्णरूपेण अभिव्यक्त होते हैं तब इनकी रसरूपता होती है, किन्तु जब इनका स्फुरण मात्र होता है, स्थायी भाव पूर्णतः व्यक्त न हो कर उद्बुद्ध मात्र होते हैं तब इनकी अलङ्काररूपता होती है।

ध्वनिकार ने पूर्ववर्ती आचार्य अङ्गीभूत रसादि में रसदादादि तथा अङ्गभूत रसादि में उदात्त अलङ्कार मानते थे जैसा अलङ्कारसर्वस्वकार रूपित करते हैं -

यत्र यस्मिन् दर्शने वाक्यर्थीभूताः रसादयो रसवदायलंकाराः
तत्राङ्गभूत रसादि विषये द्वितीय उदात्तलङ्कारः।।[23]

परन्तु जब आचार्य आनन्दवर्धन ने प्रधान रसादि को अलङ्कार्य सिद्ध कर दिया तो अङ्गभूत रसादि अलङ्कार हो गया। अङ्गभूत रसादि को रसवदादि मानने से द्वितीय उदात्त अलङ्कार का विषय ही समाप्त हो गया। इस प्रकार रसवदादि अलङ्कार का स्वरूप से यह निष्चित हुआ कि वाक्याथीभूत अर्थ के अङ्ग बने हुए रस में रसवद्, भाव में प्रेयस, रसाभास, भावाभास में ऊर्जस्विव तथा भावप्रषम में समाहित अलङ्कार होता है। उन्होंने प्राचीनों की रसवदादि अलङ्कारों की मान्यता को पूर्ण रूप से अस्वीकार भी नहीं किया। उनके अनुसार यद्यपि रस अलङ्कार्य है, तथापि वे उन स्थितियों में अलङ्कार भी हो सकता हैं जहाँ वे किसी अन्य अर्थ की चारूत्व वृद्धि में तत्पर हों। इस स्थिति में उन्हें रसवदादि अलङ्कार की संज्ञा दी जा सकती है-

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्रांगन्तु रसादयः।
काव्ये तस्मिन्त्रलङ्कारों रसादिरिति मे मतिः।।[24]

आचार्य आनन्दवर्धन ने रसवत् अलंकार को गुणीभूत व्यङ्ग्य मानते हुये उसे इस प्रकार निरूपित किया है-

रसादिरूप व्यङ्ग्यस्य गुणीभावो रसवदलङ्कारे दर्शितः।[25]

ध्वनिप्रतिष्ठापक आचार्य मम्मट ने इन अलङ्कारों का पृथक रूप से निरूपण न करके गुणीभूत व्यङ्ग्य के एक भेद अपराङ्ग व्यङ्ग्य के रूप में निरूपित किया और स्पष्ट भी कर दिया है कि यह अपराङ्ग ही रसवदादि अलङ्कार है-

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्रङ्गन्तु रसादयः।
यत्र वाक्यार्थीभूतस्य अङ्ग रसादि अनुरणनत्व वा।
ऐते च रसवदाद्यलङ्काराः।[26]

इसके अन्तर्गत रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भाव सन्धि, भाव-शान्ति और भाव शबलता की वे स्थितियाँ आती हैं जिसमें वे वाक्यार्थ के प्रति गौण हो गयी हों। मम्मट ने इन रसवदादि के अन्तर्गत गुणीभूत रस, रसवत्, भाव, प्रेयस, भावाभास, रसाभास, ऊर्जस्वि और भावप्रशम समाहित का वर्णन तो किया ही साथ ही उन्होंने भावोदय, भावशान्ति और भावशवलता की गुणीभूत स्थितियों को भी इनके अन्तर्गत मान लिया है।[27] इन संबंध में आचार्य मम्मट का कथन है कि अभी तक तो किसी ने इन्हें अलङ्कार नहीं कहा है परन्तु आगे कोई कह सकता है। क्योंकि वे भी रसभाव के समान ही अन्यार्थ के उपस्कार हैं अतः इन्हें पहले से ही गुणीभूत-व्यङ्ग्य में सम्मलित कर शङ्का को अवकाष ही नहीं दिया गया हैं।[28]
"एस॰ के॰ डे" का कथन है-

उदाहरण के लिए बहुविवेचित रसवदादि अलङ्कारों में जिसे प्राचीन काव्य विधा में मान्यता दी गयी है। और जिसके कारण प्राचीन सिद्धान्तों में रस तथा भाव का समावेश हो सका था, रसों और भावों का उद्दीपन रस तथा भाव की निष्पत्ति के निमित्त नहीं

होता, अपितु वाच्य की शोभा वृद्धि के लिए ही माना गया था।[29] ए• बी• कीथ भी दण्डी आदि द्वारा कहे गये रसवदादि को गुणीभूत के अन्तर्गत ही मानते हैं।

But the system does not deny the right to rank as poetry of poetry which contains only in a secondary digram suggustion (guribhutuvyangya). This head helped them to find a place for the doctrine of the older writers who accepted in contain the expression of sentiments, as in the preyas, rasvat and urjasvin of dandin.[30]

उपसंहार

वस्तुतः अलङ्कार सम्प्रदाय के अन्तर्गत रसादि को रसवद्, प्रेयस, ऊर्जस्वि समाहित तथा उदात्त आदि अलङ्कारों के रूप स्वीकार करते हैं और रस और अलङ्कार में प्रायः भेद नहीं करते हैं। परन्तु रस को अलङ्कार मानना रसवादी एवं ध्वनिवादी आचार्यों को अभीष्ट नहीं है। वे प्रधान रूप से रस तथा ध्वनि को तथा गौण रूप से अलङ्कार को काव्योपयागी मानते हैं। भोजराज गुणों को भी अलङ्कार मानते हैं और रस को भी परन्तु जब रस पूर्ण रूप से व्यक्त नही होता अपितु रति आदि भाव केवल युक्तोत्कर्ष होते हैं, मात्र उद्बुद्ध होते हैं तब वे अलङ्कार सदृष ही होते हैं। जब सभी भावों में शीर्षस्थ रति का चरम उत्कर्ष प्राप्त होने से भावना का अधिगम होता है तब भावरूपता का उल्लङ्घन करके प्रेम रूप में परिणित उसका ग्रहण करने से अन्य भाव भी प्रकर्ष को प्राप्त करके रस रूपता में परिणित हो जाते हैं। भोज का रसोक्ति सम्बन्धी विवेचन ध्वनिवादी आचार्यों की मान्यता का समर्थन करता दिखायी देता है।

सन्दर्भग्रन्थ

1 सरस्वतीकण्ठाभरण 1/2
2 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/8
3 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/1,3
4 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/9,11,12
5 काव्यालङ्कार - 3/6
6 काव्यालङ्कार - 3/5
7 काव्यालङ्कार - 3/7
8 काव्यादर्ष - 2/275
9 काव्यादर्ष - 2/1
10 काव्यालङ्कारसारसंग्रह - 4/2
11 काव्यालङ्कारसारसंग्रह- 4/6
12 काव्यालङ्कारसारसंग्रह - 4/8
13 काव्यालङ्कारसारसंग्रह - 4/8
14 काव्यलङ्कार (रूद्रट) 12 वें अध्याय से 15 वें अध्याय तक
15 काव्यालङ्कार सार संग्रह-लघुवृत्ति
16 यत्र रसादयो वाक्यार्थीभूताः स सर्वः न रसादेरलङ्कारस्य विषयः, सध्वनेः प्रभेद, तस्योपमादयोऽलङ्काराः। ध्व0 2/5 वृत्ति।
17 ध्व0-2/5
18 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/453
19 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/453 वृत्ति
20 काव्यादर्ष - 2/275
21 सरस्वतीकण्ठाभरण 5/453 वृत्ति
22 अलङ्कार सर्वस्व पृ0 233
23 ध्व0-2/5
24 'ध्व0 3/35 वृत्ति''
25 का0 प्र0 - 5/45 वृत्ति
26 रसवत्प्रेयऊर्जस्विसनाऽितभावोदयभावसन्धिमावषबलतावेतिसप्तरसवदादयो येऽलङ्काराः।"
27 का0 प्र0 5/45 वृत्तिःबालबोधिनी
28 यद्यपि भावोदयानावसन्धिनावषबलत्वानि नालंकारतवा उक्तानि, तथाऽपि कष्चितद् ब्रूयादित्येवमुक्तम्। का0 प्र0 5/45
29 संस्कृत साहित्य का इतिहास-एस0के0डे हिन्दी अनुवाद पृ0 147
30 The History of Sanskrit Literature……..page369